बटोर पृथ्वी की पूरी ऊर्जा/उठेगा धीरे-धीरे ज़मीन से/ज़मीन पर गिरा आदमी/और अपने लड़खड़ाते कदमों से नापते दूरियाँ /पहुँच जाएगा वहाँ/जहाँ उस जैसे तमाम आदमियों पर बहस/चल रही होगी।

(नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द)

निर्मला पुतुल

जन्मः सन् 1972, दुमका (झारखंड)

प्रमुख रचनाएँः नगाड़े की तरह बजते शब्द, अपने घर की तलाश में

निर्मला पुतुल का जन्म एक आदिवासी परिवार में हुआ। इनका आरंभिक जीवन बहुत संघर्षमय रहा। घर में शिक्षा का माहौल होने (पिता और चाचा शिक्षक थे) के बावजूद रोटी की समस्या से जूझने के कारण नियमित अध्ययन बाधित होता रहा।

नर्स बनने पर आर्थिक कष्टों से मुक्ति मिल जाएगी यह विचार कर उन्होंने नर्सिंग में डिप्लोमा किया और काफ़ी समय बाद इग्नू से स्नातक की डिग्री प्राप्त की। संथाली समाज और उसके राग-बोध से गहरा जुड़ाव पहले से था, नर्सिंग की शिक्षा के समय बाहर की दुनिया से भी परिचय हुआ। दोनों समाजों की क्रिया-प्रतिक्रिया से वह बोध विकसित हुआ जिससे वह अपने परिवेश की वास्तविक स्थिति को समझने में सफल हो सकीं।

उन्होंने आदिवासी समाज की विसंगतियों को तल्लीनता से उकेरा है—कड़ी मेहनत के बावजूद खराब दशा, कुरीतियों के कारण बिगड़ती पीढ़ी, थोड़े लाभ के

लिए बड़े समझौते, पुरुष वर्चस्व, स्वार्थ के लिए पर्यावरण की हानि, शिक्षित समाज का दिक्कुओं और व्यवसायियों के हाथों की कठपुतली बनना आदि वे स्थितियाँ हैं जो पुतुल की कविताओं के केंद्र में हैं।

वे आदिवासी जीवन के कुछ अनछुए पहलुओं से, कलात्मकता के साथ हमारा परिचय कराती हैं और संथाली समाज के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं को बेबाकी से सामने रखती हैं। संथाली समाज में जहाँ एक ओर सादगी, भोलापन, प्रकृति से जुड़ाव और कठोर परिश्रम करने की क्षमता जैसे सकारात्मक तत्व हैं, वहीं दूसरी ओर उसमें अशिक्षा, कुरीतियाँ और शराब की ओर बढ़ता झुकाव भी है।

***आओ, मिलकर बचाएँ** कविता में दोनों पक्षों का यथार्थ चित्रण हुआ है। वृहत्तर संदर्भ में यह कविता समाज में उन चीज़ों को बचाने की बात करती है जिनका होना स्वस्थ सामाजिक-प्राकृतिक परिवेश के लिए ज़रूरी है। प्रकृति के विनाश और विस्थापन के कारण आज आदिवासी समाज संकट में है, जो कविता का मूल स्वर है। संथाली भाषा से हिंदी रूपांतर **अशोक सिंह** ने किया है।*

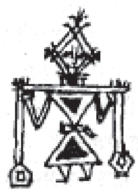

आओ, मिलकर बचाएँ

अपनी बस्तियों को
नंगी होने से
शहर की आबो-हवा से बचाएँ उसे

बचाएँ डूबने से
पूरी की पूरी बस्ती को
हड़िया में

अपने चेहरे पर
सन्थाल परगना की माटी का रंग
भाषा में झारखंडीपन

ठंडी होती दिनचर्या में
जीवन की गर्माहट
मन का हरापन
भोलापन दिल का
अक्खड़पन, जुझारूपन भी

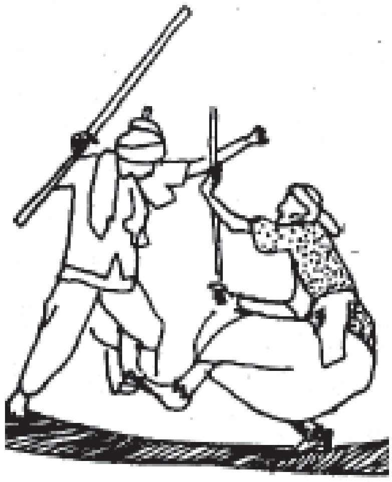

भीतर की आग
धनुष की डोरी
तीर का नुकीलापन
कुल्हाड़ी की धार
जंगल की ताज़ा हवा
नदियों की निर्मलता
पहाड़ों का मौन
गीतों की धुन
मि^ी का सोंधापन
फसलों की लहलहाहट

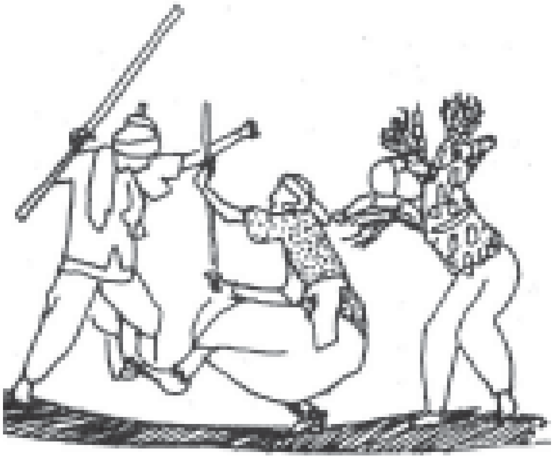

नाचने के लिए खुला आँगन
गाने के लिए गीत
हँसने के लिए थोड़ी-सी खिलखिलाहट
रोने के लिए मु_ी भर एकान्त

बच्चों के लिए मैदान
पशुओं के लिए हरी-हरी घास
बूढ़ों के लिए पहाड़ों की शान्ति

और इस अविश्वास-भरे दौर में
थोड़ा-सा विश्वास
थोड़ी-सी उम्मीद
थोड़े-से सपने

आओ, मिलकर बचाएँ
कि इस दौर में भी बचाने को
बहुत कुछ बचा है,
अब भी हमारे पास !

अभ्यास

कविता के साथ

1. ***माटी का रंग*** प्रयोग करते हुए किस बात की ओर संकेत किया गया है?
2. भाषा में ***झारखंडीपन*** से क्या अभिप्राय है?
3. दिल के भोलेपन के साथ-साथ अक्खड़पन और जुझारूपन को भी बचाने की आवश्यकता पर क्यों बल दिया गया है?
4. प्रस्तुत कविता आदिवासी समाज की किन बुराइयों की ओर संकेत करती है?
5. ***इस दौर में भी बचाने को बहुत कुछ बचा है–*** से क्या आशय है?
6. निम्नलिखित पंक्तियों के काव्य सौंदर्य को उद्घाटित कीजिए-

   (क) ***ठंडी होती दिनचर्या में***
   जीवन की गर्माहट

   (ख) ***थोड़ा-सा विश्वास***
   थोड़ी-सी उम्मीद
   थोड़े-से सपने
   आओ, मिलकर बचाएँ।

7. बस्तियों को शहर की किस आबो-हवा से बचाने की आवश्यकता है?

कविता के आस-पास

1. आप अपने शहर या बस्ती की किन चीज़ों को बचाना चाहेंगे?
2. आदिवासी समाज की वर्तमान स्थिति पर टिप्पणी करें।

शब्द-छवि

आबो-हवा	-	जलवायु
माटी	-	मिट्टी
सोंधापन	-	सुगंध
उम्मीद	-	आशा
दौर	-	समय
अक्खड़पन	-	किसी बात को लेकर रुखाई से तन जाने का भाव
जुझारूपन	-	जूझने या संघर्ष करने की प्रवृत्ति